17 मार्च 2008, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

भटक जाने के अवसर भी कम नहीं है; अत: आत्मार्थियों के लिये स्वाध्याय के साथ-साथ सत्समागम भी अपेक्षित है।

ह्न बिखरे मोती, पृष्ठ-198

वर्ष : 30, अंक : 24 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये

मार्च (द्वितीय), 2008 प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

25 वीं अखिल भारतीय जैन विद्या संगोष्ठी सम्पन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ जैन अनुशीलन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर एवं त्रिलोक उच्चस्तरीय अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान कोटा के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 8 से 10 मार्च, 08 तक श्री टोडरमल स्मारक भवन में 25 वीं अखिल भारतीय जैन विद्या संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

संगोष्ठी का मुख्य विषय **जैन धर्म एवं हिन्दू धर्म** था।

दिनांक 8 मार्च को प्रात: संगोष्ठी का उद्घाटन श्री दौलतजी डागा के करकमलों से हुआ। समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर के न्यायाधिपति माननीय श्री नरेन्द्रकुमार जैन एवं विशिष्ट अतिथि के रूप में डॉ. टी. सी. कोठारी मंचासीन थे। समरोह की अध्यक्षता डॉ. महावीर राज गैलड़ा ने की।

इस अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में मंचासीन ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने अपने उद्बोधन में जैनधर्म और हिन्दूधर्म की तुलना करते हुये यह स्पष्ट किया कि जैनधर्म हिन्दूधर्म की शाखा नहीं अपितु स्वतंत्र प्राचीनतम धर्म है।

राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित प्रो. दयानंद भार्गव ने अपने विशिष्ट व्याख्यान में जैनधर्म को वस्तु स्वभाव पर आधारित होने से सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक सिद्ध किया। उन्होंने श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि मुझे यह देखकर खुशी होती है कि संस्था के छात्र स्वयं संस्कारवान, ज्ञानवान एवं शीलवान होकर बाहर निकलते हैं और समाज को भी संस्कारवान बनाते हैं। वास्तव में यह संस्था दुनिया की तमाम संस्थाओं के बवण्डरों के मध्य में दीपशिखा के समान दैदिप्यमान है। मैं तो चाहता हूँ कि यू.जी.सी के प्रतिनिधियों को यहाँ आकर देखना चाहिये कि यह शिक्षण संस्था किस तरह से कार्य करती है।

संगोष्ठी के निदेशक डॉ. पी. सी. जैन ने समागत अतिथियों का परिचय दिया तथा श्री राजकुमारजी काला ने सभी का हार्दिक अभिनन्दन एवं स्वागत किया।

इस अवसर पर आयोजित सभा का संचालन डॉ. कोकीलाजी सेठी जयपुर ने तथा मंगलाचरण डॉ. मन्जू जैन एवं कु. परिणति पाटील ने अपने मधुर स्वरों में किया।

त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के सात सत्रों में निम्नलिखित विद्वानों का लाभ प्राप्त हुआ ह्न

पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल जयपुर, डॉ. उदयचंदजी जैन उदयपुर, डॉ. ऋषभजी फौजदार वैशाली, डॉ. पी.सी. जैन जयपुर, प्रो. लालचंदजी जैन, डॉ. श्रेयांसजी जैन, डॉ. सत्यप्रकाशजी दिल्ली, डॉ. वीरसागरजी जैन दिल्ली, डॉ. राजेन्द्रजी बंसल अमलाई, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील जयपुर, डॉ. सुदर्शनलालजी वाराणसी, डॉ. प्रेमचंदजी रांवका, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, श्री धीरजजी जैन जोधपुर, डॉ. मंजूजी जैन, वैद्य प्रभुदयालजी कासलीवाल, श्री अखिलजी बंसल जयपुर, डॉ. राजकुमारी जैन अजमेर, डॉ. कृष्णाजी जैन ग्वालियर, डॉ. कल्पनाजी जैन नई दिल्ली, डॉ. महिमाजी वासल अलवर, डॉ. निर्मलाजी गोदिका उदयपुर, डॉ. नन्दिता सिंघवी बीकानेर, डॉ. भागचंदजी जैन, कु. सीमा जैन, डॉ. बी. एल. सेठी झुंझुनूं, श्री ताराचंदजी पाटनी, डॉ. शिवसागर त्रिपाठी, श्री नीतेश शाह जयपुर आदि 71 विद्वानों ने अपने वक्तव्य के माध्यम से जैनधर्म एवं हिन्दूधर्म के विविध पहलुओं को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया।

संगोष्ठी में समागत सभी अतिथि विद्वानों को पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की ओर से सत्साहित्य भेंटकर सम्मानित किया गया।

दिनांक 10 मार्च को दोपहर में समापन समारोह की अध्यक्षता प्रो. के. एल. कमल ने की। मुख्य अतिथि पूर्व न्यायाधिपति श्री पानाचंदजी जैन एवं विशिष्ट अतिथि पद्मभूषण श्री डी. आर. मेहता, डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, प्रो. दयानन्दजी भार्गव एवं डॉ. रमेशचंदजी जैन थे। इस अवसर पर देवर्षि कलानाथ शास्त्री के विशिष्ट व्याख्यान का लाभ मिला।

त्रिदिवसीय संगोष्ठी के अंतर्गत हुये सम्पूर्ण कार्यक्रम डॉ. पी. सी. जैन के निर्देशन में सम्पन्न हुये।

सम्पादकीय - 2

चलते-फिरते सिद्धों से गुरु

ह्न पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

आज का प्रवचन प्रारंभ करने के पहले आचार्यश्री ने पिछले प्रवचन के विषय की याद दिलाते हुए श्रोताओं से प्रश्न किए तथा सभी से संतोषजनक उत्तर पाकर आचार्यश्री बहुत प्रसन्न हुए तथा संक्षेप में उत्तरों की अपने मुख से पुनरावृत्ति करते हुए उन्होंने कहा ह्न

''देखो, जिनेन्द्र देव वीतराग होने से किसी के सुख-दु:ख के कर्ता-हर्ता नहीं हैं। सर्वज्ञ होने से वे जानते सब कुछ हैं, पर करते कुछ नहीं हैं। हाँ, जो उनकी निष्काम भक्ति करते हैं, उन्हें स्वयं ही ऐसा सातिशय पुण्यबंध होता है, जिससे उन्हें लौकिक अनुकूलतायें सहज ही प्राप्त हो जाती हैं।

आचार्य समन्तभद्र ने भी स्वयंभू स्तोत्र में यही कहा है ह्न

'न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नि: पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्य:।।

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान वीतराग हैं; अत: उन्हें अपनी पूजा से कोई प्रयोजन नहीं है तथा बैर रहित हैं; अत: निन्दा से भी कोई प्रयोजन नहीं है; तथापि उनके पवित्र गुणों का स्मरण पापियों के पापरूप मल से मलिन मन को निर्मल कर देता है।'

अरहन्तदेव के संदर्भ में आचार्यश्री ने अरहंत पद प्राप्त करने की प्रक्रिया के द्वारा अरहंत का स्वरूप समझाते हुए कहा ह्न ''जिन्होंने गृहस्थपना छोड़, मुनिधर्म अंगीकार कर निज स्वभाव साधन द्वारा चार घातिया कर्मों का क्षय करके अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनंतसुख व अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टय प्राप्त कर लिया, वे अरहंत हैं।'

अरहंत देव के स्वरूप में वीतरागता और सर्वज्ञता ह्न ये दो गुण मुख्य हैं। इन्हें अच्छी तरह समझने से ही हमारी पर में कर्तृत्व व भोक्तृत्व की मिथ्या मान्यता खण्डित हो जाती है। सर्वज्ञ एवं वीतरागी अरहंत भगवान का यथार्थ ज्ञान होने से हमें ऐसी श्रद्धा हो जाती है कि ह्न

जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी होसी नहिं कबहूं, काहे होत अधीरा रे।।
समयो एक घटे नहिं बढसी, जो सुख-दु:ख की पीरा रे।
तू क्यों सोच करे मन मूरख, होय वज्र ज्यों हीरा रे।।

ऐसी श्रद्धा से एवं प्रतिदिन पूजा के माध्यम से सर्वज्ञता के स्वरूप का बार-बार चिन्तन होने से यह श्रद्धान दृढ हो जाता है कि 'हमारा जो होनेवाला है, उसे इन्द्र और जिनेन्द्र भी टाल नहीं सकते।' तो फिर आर्तध्यान कर पाप क्यों बाँधें? ऐसे सोच से हमारी अधीरता (बैचेनी) कम हो जाती है, हम शान्त निराकुल हो जाते हैं। अत: हमें प्रतिदिन पूजा तो करना ही है; परन्तु उसका स्वरूप समझकर करनी है। बिना समझे कोरी क्रिया से हमें पूजा का कोई लाभ नहीं होगा। सही तरीके से पूजा-भक्ति करने से उनके गुणों को पहिचानकर एक दिन हम स्वयं भी अरहंत बन सकते हैं, परन्तु अरहंत बनने के पहले निर्ग्रन्थ होना जरूरी है।

एक श्रोता ने आचार्यश्री से आज्ञा लेकर विनयपूर्वक विनम्र शब्दों में प्रश्न किया ह्न ''गुरुवर ! 'प्रभु पतित पावन' स्तुति में भी तो अरहंत भगवान को 'पतित पावन' और स्वयं को 'अपावन' कहा है। यदि ऐसा मानना मिथ्या है तो इस स्तुति को मान्य क्यों किया गया ?

आचार्यश्री ने समाधान करने के पहले उसी श्रोता से पूछा ह्न ''क्या वीतरागी अरहंत भगवान पतितों को पावन कर सकते हैं ? यदि कर सकते हैं तो आदिनाथ ने अपने पोते मारीचि को एक कोड़ाकोड़ी सागर तक संसार में चतुर्गति का दु:ख भोगने को क्यों छोड़ा ? क्या अपने सगे पोते पर इतनी भी करुणा नहीं आई ? वे कैसे करुणा सागर थे, अधम उधारक थे ? अरे भाई, वास्तव में तो यह ईश्वरवादियों की मान्यता है। वे ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता मानते हैं। जैन दर्शन के अनुसार तो सृष्टि स्व संचालित है, आटोमेटिक है। यह अनादि-अनंत हैं, इसे न किसी ने बनाया है और न कोई इसका विनाश करता है।''

श्रोता ने पुन: साहस करके पूछा ह्न ''तो उस स्तुति का क्या अर्थ है ?''

आचार्यश्री ने कहा ह्न ''अरे भाई ! वहाँ तो कवि भगवान महावीर स्वामी से यह कह रहा है कि 'हे प्रभो ! आप पतित से पावन बन गये हो, मारीचि से महावीर बन गये, शेर से सन्मति बन गये, भक्त से भगवान बन गये हो।'' यह अर्थ तो है 'प्रभु पतितपावन' वाक्य का और 'मैं अपावन' वाक्य का अर्थ है कि 'मैं अभी भी रागी-द्वेषी व अज्ञानी हूँ, संसारी हूँ, दु:खी हूँ; अत: मैं आप की शरण में यह जानने आया हूँ कि आप पतित से पावन कैसे बने? भक्त से भगवान कैसे बने ? मैं भगवान कैसे बनूँ ? यह जानने के लिए आपके चरणों की शरण में आया हूँ? आप मुझे यह बताइए। यह मुझे मालूम है कि आप तो पूर्व पर्यायों में मुझसे भी गये-बीते थे, जब आप भगवान बन सकते तो मैं क्यों नहीं?'

तब भगवान ने मौन रहते हुए मानो अंग-अंग से उत्तर दिया ह्न

'तू मेरी तरह निश्चल बैठकर नासाग्र दृष्टि करके अन्तर्मुख ध्यानस्थ होकर अपने स्वरूप की पहिचान कर, तू अभी भी स्वभाव से तो कारण परमात्मा है ही, उसकी श्रद्धा एवं ध्यान से तू पर्याय में भी कार्य परमात्मा बन जायेगा।

तथा ऐसा विचार कर कि - 'मैंने पूर्व में जैसे पुण्य या पाप रूप कर्म किए हैं, उन्हीं का शुभ या अशुभ फल मुझे अब प्राप्त हुआ है और यदि अब भी नहीं चेता तो आगामी पर्यायों में भी यही दुर्गति होगी। यदि दूसरों के द्वारा दिया फल मुझे मिले, तब तो मेरे किए पुण्य-पाप सब निरर्थक सिद्ध होंगे। तात्पर्य यह है कि जीव अपने पुण्य-पाप का फल ही भोगता है। कोई किसी को सुखी-दु:खी नहीं कर सकता।''

यह सुनकर सभी श्रोता गद्‌गद हो गये। सबको ऐसा लगा कि 'अरे ! हमने यह तो कभी सोचा ही नहीं था और सुना भी नहीं था कि

भगवान किसी का भला नहीं करते, कर भी नहीं सकते; क्योंकि जैनधर्म के अनुसार भगवान तो जगत के अकर्ता हैं और सब जीव अपने पुण्य–पाप और धर्म का ही फल पाते हैं। आचार्य अमितगति ने सामायिक पाठ में कहा भी है ह्न

'स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा फलं तदीयं लभते शुभाशुभं।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।।'

जैन दर्शन के अनुसार अरहंत भगवान को पतितों को पावन करने वाला नहीं मान सकते; क्योंकि अरहंत भगवान तो मात्र ज्ञाता होते हैं, कर्त्ता नहीं।

कोई कहेगा कि व्यवहार से तो कह सकते हैं। उससे कहते हैं कि ह्न 'ऐसा कहना व्यवहार है, पर ऐसा ही मान लेना मिथ्यात्व है। व्यवहार से कहने का कोई खास अर्थ नहीं होता। जब हम किसी को अपना घर दिखाते हैं एवं बच्चों से परिचय कराते हैं तो उससे ऐसा कहते हैं कि ये घर आपका ही है, ये बच्चे भी आपके ही हैं, सुननेवाला भी समझता है कि मुझे सम्मान देने को ऐसा कह रहा है। वह ऐसा ही नहीं मान लेता कि यह घर व बच्चे मेरे हैं।'

पण्डित टोडरमलजी देवभक्ति के अन्यथा स्वरूप में कहते हैं ह्न 'उन अरहन्तों को स्वर्ग–मोक्षदाता, दीनदयाल, अधम उधारक, पतितपावन मानता है; सो जैसे अन्यमती कर्तृत्वबुद्धि से ईश्वर को मानता है; उसी प्रकार यह अरहन्त को मानता है। ऐसा नहीं जानता कि फल तो अपने परिणामों का लगता है, अरहन्त तो निमित्तमात्र हैं, इसलिये उपचार द्वारा वे विशेषण सम्भव होते हैं।

तथा अरहन्तादिक के नाम–पूजनादिक से अनिष्ट सामग्री का नाश तथा इष्ट सामग्री की प्राप्ति मानकर रोगादि मिटाने के अर्थ व धनादिक की प्राप्ति के अर्थ नाम लेता है व पूजनादि करता है ; सो इष्ट–अनिष्ट का कारण तो पूर्वकर्म का उदय है, अरहन्त तो कर्त्ता हैं नहीं। अरहन्तादिक की भक्तिरूप शुभोपयोग परिणामों से पूर्वपाप के संक्रमणादि हो जाते हैं, इसलिये उपचार से अनिष्ट के नाश का व इष्ट की प्राप्ति का कारण अरहन्तादिक की भक्ति कही जाती है। परन्तु जो जीव प्रथम से ही सांसारिक प्रयोजनसहित भक्ति करता है उसके तो पाप ही का अभिप्राय हुआ। कांक्षा, विचिकित्सारूप भाव हुए – उनसे पूर्व पाप के संक्रमणादि कैसे होंगे? इसलिये उसका कार्य सिद्ध नहीं हुआ।'

पंचास्तिकाय में कहा है कि ह्न 'यह भक्ति केवल भक्ति ही है, प्रधान जिसके ऐसे अज्ञानी जीव के होती है। तथा तीव्र रागज्वर मिटाने के अर्थ या अस्थान के राग का निषेध करने के अर्थ कदाचित् ज्ञानी के भी होती हैं।'

परन्तु भक्ति में उपचार से कभी कदाचित् अरहंत को सुख का दाता और दुःख का हर्त्ता कह देते हैं, उसके कहने का अर्थ मात्र इतना है कि जब भक्त मंद कषाय और शुभभावों से स्वयं ही पुण्य बांध कर अनुकूल फल प्राप्त करता है तो उसे ही भगवान की भक्ति का फल कह देता है; परन्तु मानता यही है कि फल अपने परिणामों का ही मिलता है, भगवान उसके कर्त्ता नहीं है।''

एक श्रावक ने पूछा कि ह्न ''यदि ऐसा है तो भगवान को पूज्य कहने का क्या प्रयोजन रहा? हम उनकी पूजा–भक्ति क्यों करें?''

उत्तर मिला ह्न ''पूजन के मुख्यतः दो ही प्रयोजन हैं ह्न एक पापों से बचना और दूसरा परमात्मपद प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करना।

पहला प्रयोजन तो इस तरह पूरा हो जाता है कि जब तक अरहंत व सिद्ध परमात्मा हमारे ध्यान में विचरेंगे; तब तक पाँचों पाप, पाँचों इन्द्रियों के विषय एवं राग–द्वेषादि मनोविकार हमारे ध्यान में आ ही नहीं सकेंगे; क्योंकि ध्यान में परमात्मा और पाप एक साथ नहीं ठहरते।

क्षेत्र व काल की अपेक्षा भी जिन मन्दिर में और पूजा–पाठ करते समय हम विषय–कषाय के वातावरण से अछूते ही रहते हैं ; क्योंकि मन्दिर की मर्यादित सीमा में विषय–विषधर प्रवेश नहीं पाते। इस कारण मन्दिर में पाप करने का कोई प्रसंग नहीं बनता।

दूसरा प्रयोजन परमात्मा बनने का है, वह प्रयोजन भी परमात्मा के स्वरूप को द्रव्य–गुण–पर्याय से जानने–पहचानने से, उसी में चित्त को रमाने से पूरा हो जाता है। कहा भी है ह्न

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।।

जो अरहंत भगवान को द्रव्य–गुण–पर्याय से जानता है, वह निश्चय से अपने आत्मा को जानता ही है और उसका मोह नियम से नष्ट हो जाता है।'

जब तक परिपूर्ण ज्ञान एवं पूर्ण पवित्रता की प्राप्ति अपने जीवन में नहीं हो पाती, तबतक न चाहते हुये भी शुभभावों के रहने से ज्ञानी धर्मात्माओं को भी सातिशय पुण्यबंध सहज ही होता रहता है, जिसके निमित्त से लौकिक अनुकूलतायें भी बनी ही रहती हैं।

अन्य अज्ञानी जीवों के भी यदि पूजा करते समय मंद कषाय हुई तो उतनी देर पापों से निवृत्ति के कारण उन्हें भी यथायोग्य पुण्य की प्राप्ति हो जाती है। यदि किसी के मन में लौकिक कामना की तीव्र कषाय रही तो पूजा जैसे पवित्र कार्य करते हुए भी पापबंध भी होता है; क्योंकि पुण्य–पाप बंध भी तो भावों से ही होता है। कहा भी है ह्न

'बन्ध–मोक्ष परिणामनि ही सों, कहत सदा ये जिनवर वाणी।'

इसप्रकार आज पूज्य, पूजक, पूजा और पूजा के प्रयोजन तथा उसके फल के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की। इन विषयों को जानकर पहचानकर उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें। आज इतना ही, शेष अगले प्रवचन में। ॐ नमः। ●

(शेष पृष्ठ–7 का शेष ...)

यह बात आरंभ में कही थी और अब ग्रन्थ समाप्त हो रहा है; इसलिये याद दिला रहे हैं कि **यह सिख आदरो** ह्न इस शिक्षा का आदर करो।

कोई कहे कि हम इस शिक्षा का आदर किस प्रकार करें ?

उससे कहते हैं कि भाई ! जबतक कोई महारोग नहीं लगा है और बुढ़ापा नहीं आया है, तबतक आत्मा का हित कर लो, वरना ...।

कुछ लोग कहते हैं कि धर्म करना तो बुढ़ापे का काम है; पर यहाँ यह कहकर कि जबतक बुढ़ापा नहीं आया है; तबतक आत्महित कर लो का अर्थ यह है कि आत्महित का काम जबतक स्फूर्ति रहती है; तबतक बचपन और जवानी में ही कर लेना चाहिये। बुढ़ापा भले ही समय पर आयेगा, पर रोग तो कभी भी हो सकता है और बुढ़ापा आयेगा ही ह्न इसकी क्या गारंटी है ? यह भी तो हो सकता है कि हम बुढ़ापा आने के पहले ही चल बसें। अत: बात कल पर टालने की नहीं है। यह काम तो ऐसा है कि आज ही, अभी कर लेना चाहिये। बहाने बनाकर समय पास करने से कोई लाभ नहीं है।

अन्तिम प्रशस्ति के रूप में वे लिखते हैं ह्न

(दोहा)

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल वैशाख।
करयो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख।।
लघु–धी तथा प्रमाद तैं, शब्द–अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पाओ भव–कूल।।

विक्रम संवत् 1891 में वैशाख शुक्ल तीज अर्थात् अक्षयतृतीया के दिन बुधजन कवि के छहढाला को देखकर अथवा बुद्धिमान लोगों की भाषा को देखकर यह तत्त्वोपदेश दिया है।

इसप्रकार वे इस ग्रन्थ को तत्त्वोपदेश का ग्रन्थ मानते हैं।

अन्त में अपनी लघुता प्रगट करते हुये लिखते हैं कि अल्पबुद्धि और प्रमाद के वश होकर कहीं शब्दों के प्रयोग में अथवा पदार्थ के प्रतिपादन में कोई भूल रह गई हो तो सुधी अर्थात् बुद्धिमान लोगों से प्रार्थना है कि वे सदा गलती को सुधार कर इसको पढ़ो।

यदि आप ऐसा करोगे तो संसार समुद्र का किनारा प्राप्त कर लोगे।

अंकानाम् वामतो गति: ह्न अंक बाईं ओर से गमन करते हैं, चलते हैं। इस नियम के अनुसार **इक नव वसु इक** का अर्थ 1891 होता है। इससे यह सहज ही स्पष्ट है कि इस कृति की रचना विक्रम संवत् 1891 में हुई थी।

इसप्रकार यह छहढाला नामक आध्यात्मिक कृति का सार संक्षेप में प्रस्तुत किया। हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि आत्मार्थी जनों को इससे कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा। ●

भक्तामर मंडल विधान सम्पन्न

केलवाड़ा (राज.) : यहाँ श्री आदिनाथ दि. जैन मंदिर प्रांगण में दिनांक 8 व 9 मार्च, 08 को वेदी प्रतिष्ठा की पाँचवी वर्षगाँठ के अवसर पर श्री पद्मचंदजी गुलाबचंदजी दोशी परिवार, पीसांगन की ओर से भक्तामर मंडल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित कमलचंदजी पिड़ावा के तीनों समय हुए मार्मिक प्रवचनों का लाभ समाज को प्राप्त हुआ। विधि–विधान के समस्त कार्यक्रम पण्डित अभिषेकजी शास्त्री केलवाड़ा के निर्देशन में सम्पूर्ण समाज के सहयोग से सम्पन्न हुए।

शिलान्यास समारोह सम्पन्न

ग्वालियर (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 26 व 27 जनवरी, 08 को सिद्धक्षेत्र गोपाचल के अंचल में स्थित भगवान बाहूबली मंगल तीर्थधाम के प्रांगण में श्री शीतलचंदजी बड़जात्या परिवार द्वारा श्री 1008 भगवान आदिनाथ के निर्माणाधीन मानस्तंभ के शिलान्यास समारोह के अवसर पर योगसार मंडल विधान का आयोजन किया गया।

इस प्रसंग पर दादा विमलचंदजी झांझरी उज्जैन के मार्मिक प्रवचनों का लाभ समाज को प्राप्त हुआ।

वार्षिकोत्सव सम्पन्न

खनियाँधाना (म.प्र.) : यहाँ फरवरी माह में श्री नंदीश्वर विद्यालय के वार्षिकोत्सव – 08 कार्यक्रम के अंतर्गत ब्र. बहन दीप्ति जैन के कुशल निर्देशन में जिनधर्म प्रणीत रामायण से संकलित नाटिका '**सीता की अग्नि परीक्षा**' का भव्य एवं हृदयस्पर्शी मंचन किया गया।

बाल ब्र. पण्डित सुमतप्रकाशजी के दिशा निर्देशन में इस विद्यालय में बच्चों का नैतिक एवं चारित्रिक स्तर प्रतिसमय उन्नतिरत है, जिसे बच्चों ने इस नाटिका में जीवन्तरूप से प्रस्तुत कर प्रमाणित किया। कार्यक्रम के अंत में विद्यालय के प्रशासक मनीषकुमार शास्त्री बरेली ने सभी आगन्तुकों का आभार प्रदर्शन किया।

स्लिपडिस्क रोगी ध्यान दें !

सम्पूर्ण उपचार बिना दवा, बिना कसरत, बिना चीरफाड, बिना आराम किए विश्व की नवीनतम तकनीक माइक्रो एक्यूप्रेशर द्वारा शीघ्र उपचार।

डॉ. पीयूष त्रिवेदी (मो.) 09828011871

गोल्ड मेडलिस्ट, बी.ए. एम.एस., एम.डी. (एक्यू.)

डिप्लोमा इन योगा, सुजोक (मास्को) एफ.ए.आर.सी. एस. (लंदन)

मेडिनोवा पोली क्लीनिक, केसरगढ, जे.एल.एन. मार्ग, जयपुर

समय : सायं 6 बजे से 9 बजे तक, रविवार को प्रात: 8 से 12 बजे तक

नोट – एक्यूप्रेशर सेवा समिति द्वारा 300 से अधिक नि:शुल्क शिविर आयोजित।

अन्य रोग : जोडों का दर्द, गर्दन का दर्द, मोटापा, मायोपैथी, मानस विकृतियां, मधुमेह तथा उच्च रक्तचाप आदि की सफल चिकित्सा।

बाल प्रतिभा

बाल प्रतिभा शोध संस्था श्री अवंतिका ट्रस्ट दिल्ली द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित चित्रकला प्रतियोगिता–2008 में श्री कानजीस्वामी दिगम्बर जैन तत्त्वज्ञान पाठशाला **राजकोट** की बालिका **कु. श्वेतल जैन** (कक्षा दो) ने सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर राजकोट मुमुक्षु समाज और पाठशाला का नाम रोशन किया है।

इस सफलता के उपलक्ष्य में कु. श्वेतल को गोल्डमैडल और प्रमाण–पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया। ज्ञातव्य है कि इस प्रतियोगिता में पूरे भारत से लगभग 26000 विद्यार्थी सम्मिलित हुये थे।

बालिका कु. श्वेतल जैन के पिता श्री सुनीलकुमारजी शास्त्री जैनदर्शन के अच्छे विद्वान एवं श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के स्नातक हैं।

बोल्ट अवार्ड रितेश जैन को

बांसवाड़ा (राज.) : यहाँ दिनांक 2 मार्च, 08 को प्रताप ऑडिटोरियम में एयर इण्डिया द्वारा आयोजित रैंक एण्ड बोल्ट अवार्ड्स में बोल्ट अवार्ड हेतु श्री टोडरमल सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक, रा.उ. मा. वि. रैयाना में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत **श्री रितेश जैन** को बाँसवाड़ा जिले का बोल्ट अवार्ड प्रदान किया गया। इससे पूर्व आपको विद्यालय के विकास एवं संस्कृत भाषा के प्रचार–प्रसार हेतु स्वाधीनता दिवस के अवसर पर भी जिलाधीश महोदय, बाँसवाड़ा द्वारा प्रशंसा पत्र प्रदान किया जा चुका है।

ज्ञातव्य है कि शिक्षा में नवाचार एवं छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु किये गये कार्यों हेतु शिक्षकों को 'बोल्ट' अवार्ड्स प्रदान किये जाते हैं।

दान राशि प्राप्त

1. इन्दौर निवासी श्री अशोककुमारजी विजयकुमारजी बड़जात्या परिवार की ओर से चि. अर्पित के विवाहोपलक्ष में जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग–विज्ञान को कुल 2500/–रुपये प्राप्त हुये।

2. हैदराबाद निवासी श्रीमती कमलेश ध.प. श्री आनंद साहब की ओर से सौ. वैशाली के विवाहोपलक्ष में जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग–विज्ञान को कुल 1500/– रुपये प्राप्त हुये हैं।

3. होशंगाबाद निवासी श्री सुनीलकुमारजी जैन वकील साहब की माताजी स्व. प्रभादेवीजी की स्मृति में जैन पथप्रदर्शक व वीतराग–विज्ञान को कुल 1000/–रुपये प्राप्त हुये हैं।

4. मैनपुरी निवासी श्री नरेशचंदजी जैन की पुण्य स्मृति में जैन पथप्रदर्शक व वीतराग–विज्ञान को कुल 1000/–रुपये प्राप्त हुये हैं।

'परिषद शोध शिरोमणी' सम्मान से विभूषित

गंजबासोदा (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 13 फरवरी, 08 को मध्यप्रदेश दिगम्बर जैन परिषद के प्रांतीयअधिवेशन के अवसर पर ख्यातिप्राप्त विद्वान **डॉ. राजेन्द्रकुमार जैन बंसल अमलाई** को **'परिषद शोध शिरोमणी'** सम्मान से विभूषित किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री कपूरचंदजी घुवारा (अध्यक्ष– म.प्र. हस्तशिल्प निगम, भोपाल) एवं श्री बलवंतराय जैन (अध्यक्ष– अखिल भारतीय दि. जैन परिषद, दिल्ली) ने आपको शॉल ओढ़ाकर तथा श्रीफल एवं प्रतीक चिह्न भेंटकर सम्मानित किया।

वर्तमान में आप अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद के मंत्री तथा 'समन्वय वाणी' और 'वीर' पत्रों के सम्पादक मंडल में कार्यरत हैं साथ ही अनेक संस्थाओं से जुड़े हुए हैं।

डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया सम्मानित

मुम्बई महानगर पालिका की महापौर डॉ. शोभा रावल ने दिनांक 8 मार्च,08 को विश्व महिला दिवस के अवसर पर डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया को महिला एवं बाल विकास क्षेत्र में अनुकरणीय उपलब्धियों एवं योगदान हेतु स्मृतिचिह्न, शॉल, श्रीफल और प्रशस्तिपत्र प्रदान कर विशेषरूप से सम्मानित किया।

मुम्बई में धर्म प्रभावना

मुम्बई (महा.) : यहाँ श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल एवं श्री सीमंधर जिनालय के अंतर्गत श्री अध्यात्मप्रकाशजी भारिल्ल के निर्देशन में आयोजित **'जैन अध्यात्म स्टडी प्रोग्राम एट योअर डोर स्टेप'** कार्यक्रम के अंतर्गत पण्डित आदित्यजी शास्त्री खुरई और पण्डित किशोरजी शास्त्री पैठण द्वारा मुम्बई महानगर में श्रोताओं की सुविधानुसार उनके घर पर मनवांछित समय और विषय पर कक्षा ली जाती है।

इन कक्षाओं से सैकड़ों लोग लाभान्वित हो रहे हैं। इस योजना को चारों ओर से प्रशंसा और उत्साह प्राप्त हो रहा है।

यहाँ पण्डित आदित्यजी शास्त्री द्वारा चर्चगेट, झवेरी बाजार, ग्रान्टरोड, सिक्कानगर, वरली, नेपेन्सी रोड़, दादर, लोअर परेल, वाल्केश्वर रोड़, चौपाटी, विले पार्ले, कांदिवली, बोरीवली, प्रभादेवी एवं गोरेगाँव में प्रतिदिन पाँच कक्षायें ली जाती हैं। इसके साथ ही पण्डित किशोरजी द्वारा घाटकोपर, साइन, मुलुण्ड, डोंबीवली, कल्याण, बोरीवली, चारकोपविलेज, चौपाटी, चेम्बूर आदि स्थानों पर प्रतिदिन पाँच कक्षायें ली जाती हैं।

इसप्रकार उक्त दोनों विद्वानों द्वारा प्रतिमाह 120 से 140 घण्टे ली जा रही कक्षाओं के माध्यम से लगभग 1240 लोग लाभान्वित हो रहे हैं।

गोष्ठी सम्पन्न हुई अध्यात्म स्टडी सर्किल, मुम्बई के अंतर्गत दिनांक 20 फरवरी, 2008 को श्री दिनेश भाई मोदी के निर्देशन में भारतीय विद्या भवन मुम्बई में प्रवचन स्पर्धा गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें श्रेष्ठ वक्ता के रूप में पं. आदित्यजी शास्त्री को चुना गया।

तत्त्वचर्चा

छहढाला का सार 24

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे .....)

सच्चे देव का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य समन्तभद्रस्वामी रत्नकरण्ड श्रावकाचार में उक्त तीन बातों को अनिवार्य बताते हैं ह्न

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्।।

आप्त (सच्चे देव) को वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होना चाहिए, नहीं तो वह आप्त नहीं हो सकता।

सर्वज्ञ भगवान का अनन्त सुखी होना उनकी वीतरागता के कारण है; क्योंकि सर्वज्ञ कहते ही उसे हैं; जो सम्पूर्ण जगत को जानकर भी अप्रभावित रह सके और सारे जगत को अप्रभावित रह कर जान सके।

जबतक मोह–राग–द्वेष हैं; तबतक इस जीव के जानने में जो कुछ भी आता है; उनमें से कुछ को अपना जानकर उनसे राग करने लगता है और कुछ को पराया या पर जानकर उनसे द्वेष करने लगता है। अनुकूलों से राग और प्रतिकूलों से द्वेष करना इस संसारी प्राणी की नियति है; जबकि इस लोक में न तो कोई परपदार्थ अनुकूल है और न कोई प्रतिकूल।

एक भव के स्त्री–पुत्रादि, माँ–बाप और मित्रों को दुखी देखकर यह संसारी प्राणी निरन्तर आकुल–व्याकुल रहता है। उनके अनुकूलों को मित्र और उनके प्रतिकूलों को शत्रु मानकर राग–द्वेष की आग में जलता रहता है।

कल्पना करो कि यदि वीतरागता के बिना ही सर्वज्ञता प्रगट हो जाती तो क्या होता ?

सर्वज्ञ हो जाने से इसके ज्ञान में अनन्त भवों के माँ–बाप और पत्नी–पुत्रादि आ जाते और वे वर्तमान में न जाने किस हालत में होते?

उनमें से कोई नरकों में भी हो सकता है, कोई तिर्यंच गति में हो सकता है। यह भी हो सकता है कि कोई उसे मारकर खा रहा हो। यदि कोई माँ–बहिन मनुष्यगति में हुई; पर वहाँ उसकी इज्जत लूटी जा रही हो।

कुछ भी हो सकता है; क्या यह सब आपसे देखा जायेगा ?

नहीं, तो फिर आप उनकी रक्षा के लिए क्या करेंगे ? वस्तुस्थिति तो यह है कि आप ही क्या, किसी का कोई भी कुछ कर ही नहीं सकता।

सर्वज्ञ हो जाने पर नहीं देखना भी संभव नहीं है और देखकर भी कुछ कर नहीं सकते। ऐसी स्थिति में आपके मन की स्थिति क्या होती ? इसकी कल्पना आप कर सकते हैं।

यही कारण है कि वस्तु के स्वरूप में यह सुन्दरतम व्यवस्था है कि पहले वीतरागता होती है और बाद में सर्वज्ञता। वीतरागता होने से सबकुछ जानने में आने पर भी कोई आकुलता–व्याकुलता नहीं होती।

वीतरागी और सर्वज्ञ होने के बाद दिव्यध्वनि के द्वारा उनका उपदेश होता है; जो परमसत्य का उद्घाटक होता है।

या तो कोई अज्ञान के कारण असत्य बोलता है या फिर रागद्वेष के कारण। जब सर्वज्ञ भगवान ने सबकुछ सहीरूप में जान लिया है और उन्हें किसी से कोई राग–द्वेष भी नहीं है तो फिर वे असत्य क्यों बोलेंगे ?

यही कारण है कि परम सत्य का उद्घाटन करनेवाली उनकी वाणी हितकारी होती है; इसीकारण उन्हें हितोपदेशी कहा जाता है।

पहले वीतरागी, फिर सर्वज्ञ और अन्त में हितोपदेशी ह्न इन विशेषताओं की उत्पत्ति का यही क्रम है।

इसके बाद सिद्धदशा का स्वरूप स्पष्ट करते हुये वे लिखते हैं ह्न

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिन माहिं अष्टम भू बसैं।
वसु कर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं।।
संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये।।
निज माहिं लोक अलोक, गुण–परजाय प्रतिबिम्बित भये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल यथा तथा शिव परिणये।।
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिन ही अनादि भ्रमण पंच प्रकार, तजि वर सुख लिया।।

इसके बाद शेष बचे चार अघातिया कर्मों का घात करके एक क्षण में आठवीं पृथ्वी सिद्धशिला पर विराजमान हो गये, आठ कर्मों के नाश से सम्यक्त्व आदि आठ सुगुणों से शोभायमान हो गये और खारे जल से भरे हुये इस अपार संसाररूप सागर से पार होकर सिद्धशिला पर विराजमान हो गये। वहाँ सर्व विकारों और देह से रहित, अरूपी, परम पवित्र और चैतन्यरूप अविनाशी पद को प्राप्त हो गये।

जब सिद्धदशा प्राप्त हो गई, केवलज्ञान हो गया; तब उनके उस केवलज्ञान में अलोकाकाश सहित लोक के छह प्रकार के अनन्त द्रव्य और उनमें से प्रत्येक द्रव्य के अनन्त गुण और अनन्तानन्त पर्यायें एक साथ प्रतिबिम्बित हो गईं।

इसप्रकार सिद्धदशारूप परिणमित सिद्ध भगवान अनन्तानन्त काल तक इसीप्रकार परिणमित होते रहेंगे।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ ऐसा नहीं लिखा कि उन्होंने केवलज्ञान से सबकुछ जान लिया, अपितु यह लिखा है कि सम्पूर्ण लोकालोक उनके ज्ञान रूपी दर्पण में प्रतिबिंबित हो गये।

जिसप्रकार निर्मल दर्पण में उसके सामने आनेवाले सभी पदार्थ झलक जाते हैं; उसीप्रकार उनके ज्ञानदर्पण में सभी पदार्थ अपनी त्रिकालवर्ती पर्यायों के साथ झलक गये। इसके लिए जिसप्रकार दर्पण को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता; उसीप्रकार समस्त ज्ञेयों को जानने के लिए ज्ञान को भी कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता; सहजभाव से ही सभी पदार्थ उनके जानने में आ जाते हैं।

इतना अन्तर है कि दर्पण में तो सामने के पदार्थ ही आते हैं, पर ज्ञानदर्पण में तो अलोकाकाश सहित तीनलोक में कोई भी पदार्थ कहीं भी क्यों न हो, सभी पदार्थ झलक जाते हैं। न केवल सभी पदार्थ, अपितु उनकी

वे सभी पर्यायें भी, जो होकर नष्ट हो चुकी हैं या अभी हुई ही नहीं हैं, भविष्य में होंगी; झलक जाती हैं अर्थात् सहजभाव से जानने में आती रहती हैं।

वस्तुत: स्थिति यह है कि न तो ज्ञेयों को जानने के लिए ज्ञान उनके पास जाता है और न ज्ञेय ही ज्ञान के पास आते हैं; सभी अपने–अपने स्थान पर अपने में ही रहते हैं; फिर भी सम्पूर्ण ज्ञेय ज्ञान में निरन्तर जानने में आते रहते हैं। ऐसा ही कोई ज्ञान का और ज्ञेयों का सहज स्वभाव है।

तात्पर्य यह है कि ज्ञेयों को जानने में न तो ज्ञान को कोई पराधीनता है और न ज्ञान में जाने जाने से ज्ञेयों को भी कोई पराधीनता होती है।

जब उनके केवलज्ञान में सभी द्रव्य अपने गुण और उनकी भूतकालीन, वर्तमान और भविष्य में होनेवाली सभी पर्यायें झलक गईं, ज्ञात हो गईं तो फिर वे सभी पर्यायें सुनिश्चित भी होना चाहिये।

जिसप्रकार भूतकालीन पर्यायों में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता; उसीप्रकार भविष्य में होनेवाली पर्यायों में भी किसी भी प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं।

यदि इस विषय में विशेष जानने की इच्छा हो तो लेखक की अन्य कृति '**क्रमबद्धपर्याय**' का अध्ययन किया जाना चाहिये।

जो कहानी '**काल अनन्त निगोद मंझार**' से आरंभ हुई थी; वह कहानी अब '**रहिहैं अनन्तानन्त काल**' पर समाप्त हो रही है।

वास्तव में देखा जाय तो यह कहानी तो अनादि–अनन्त है; न तो कभी आरंभ हुई थी और न कभी इसका अन्त होगा; क्योंकि कहानी का नायक भगवान आत्मा अनादि–अनन्त है। फिर भी यह कहानी निगोद में लगभग एक–सी ही चली और मोक्ष में भी सदा एक–सी ही चलेगी; अत: कहने की दृष्टि से तो कहानी समाप्त ही हो गई; क्योंकि कुछ नया–नया परिवर्तन होता है तो कहानी कहने में आती है, अब कुछ नया नहीं होना है; इसलिये ऐसा लगता है कि कहानी का अन्त हो गया है; क्योंकि अब वे सिद्ध भगवान तो अनन्त काल तक इसीप्रकार अनन्त सुख भोगते रहेंगे।

इस छन्द की अन्तिम दो पंक्तियों में कवि उन लोगों को धन्यवाद दे रहे हैं कि जिन्होंने यह महान कार्य सम्पन्न कर लिया है।

वे कहते हैं कि वे जीव धन्य हैं, धन्य हैं कि जिन्होंने मनुष्य गति और उसमें पुरुषपर्याय प्राप्त करके सिद्धदशा प्राप्त करने का यह महान कार्य सम्पन्न कर लिया है; उन्होंने ही पंचपरावर्तनरूप अनादिकालीन भ्रमण को तजकर उत्कृष्ट सुख प्राप्त कर लिया है।

आज तो हमारी स्थिति यह हो गई है कि किसी ने एक गिलास पानी पिला दिया तो हम लाख–लाख धन्यवाद दे देते हैं।

अरे भाई ! हम धन्यवाद देने को मना नहीं करते, पर ऐसा कोई काम भी तो किया हो, जो धन्यवाद के योग्य हो। पण्डित दौलतरामजी तो एकमात्र मुक्तिमार्ग पर चलने को ही धन्यवाद के योग्य कार्य मानते हैं और मुक्ति प्राप्त कर लेने को बार–बार धन्यवाद के योग्य कार्य मानते हैं। इसीलिए यहाँ मुक्ति प्राप्त करनेवालों को दो बार धनि–धनि कहकर अनेकबार धन्यवाद दिया गया है।

इसके बाद शीघ्रातिशीघ्र आत्महित की प्रेरणा देते हुये कविवर दौलतरामजी लिखते हैं ह्न

मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश–जल जग–मल हरैं।।
इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरौ।
जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ।।
यह राग–आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय–कषाय अब तो, त्याग निज–पद बेइये।।
कहा रच्यो पर–पद में न तेरो पद यहै क्यों दुख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व–पद रचि दाव मत चूको यहै।।

जिन महाभाग्यवान जीवों ने मुख्य और उपचार अर्थात् निश्चय और व्यवहार ह्न इसप्रकार दो भेदवाले रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र को धारण किया है और धारण करेंगे; उन जीवों को मुक्ति पद की प्राप्ति अवश्य होगी और उनका उत्कृष्ट कोटि का यशरूपी जल जगत के जीवों के मोह–राग–द्वेषरूप मल को हर लेगा।

देखो, यहाँ निश्चय–व्यवहार रत्नत्रय को धारण करनेवाले सन्तों को बड़भागी कहा है। पंचम ढाल के आरंभ में भी '**मुनि सकलव्रती बड़भागी**' कहकर मुनिराजों को भाग्यवान बताया गया है।

पण्डित दौलतरामजी कहते हैं कि इसप्रकार जानकर, प्रमाद छोड़कर, साहस ठानकर, मेरी इस शिक्षा का आदर करो कि जबतक रोग और बुढ़ापा अथवा बुढ़ापारूपी रोग तुम्हें जकड़ न ले, तबतक बहुत शीघ्रता से आत्मा का हित कर लो; क्योंकि यह रागरूपी आग तो सदा जला ही रही है; इसलिये समतारूपी अमृत का सेवन करो।

विषय–कषाय का सेवन तो चिरकाल से कर रहे हो। अरे भाई ! इन विषय–कषायों को अब तो छोड़ो और मुक्तिरूपी अपने परम पद को प्राप्त करो।

अरे भाई ! तू परपद में क्यों रच–पच रहा है, यह तेरा पद नहीं है। इसके लिये तू व्यर्थ ही क्यों अनन्त दु:खों को सह रहा है।

कविवर पण्डित दौलतरामजी कहते हैं कि भाई ! तुझे यह मौका मिला है, मानों तेरा दाव ही लग गया है; इसलिये तू इस दाव को किसी भी कीमत पर मत चूकना और अपने पद में, आत्मस्वभाव में रच–पचकर अनन्त सुखी हो जाना।

शब्दों का गठन तो देखो, भाषा का प्रवाह तो देखो ह्न

इमि जानि, आलस हानि, साहस ठानि, यह सिख आदरौ।

आपको याद होगा कवि ने आरंभ में ही कहा था कि ह्न

कहैं सीख गुरु करुणा धार ...
ताहि सुनो भवि मन थिर आन ...

गुरुदेव करुणा करके कुछ आत्महितकारी शिक्षा दे रहे हैं; अत: हे भव्यजीवों ! तुम उसे मन को स्थिर करके ध्यान से सुनो।

(शेष पृष्ठ–5 पर...)

17 मार्च 2008, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

हार्दिक बधाई !

श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक श्री नीरज कुमार जैन खड़ैरी (म.प्र.) का विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा कनिष्ठ अनुसंधान अध्येतावृत्ति **(JRF)** हेतु चयन हो गया है। वर्तमान में आप लाल बहादुर शास्त्री यूनिवर्सिटी दिल्ली से एम.एड. कर रहे हैं। आपको जैनपथप्रदर्शक एवं महाविद्यालय परिवार की ओर से हार्दिक बधाई !

डाक टिकिट भेजकर निःशुल्क मंगा लें..

प्रवचनसार अनुशीलन भाग-1 पृष्ठ 446, कीमत 35 रुपये और प्रवचनसार अनुशीलन भाग-2, पृष्ठ 475, कीमत 35 रुपये लेखक डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल का निःशुल्क वितरण स्व. प्रफुल्लचंद केशवलाल दोशी की स्मृति में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती नलिनी प्रफ्फुलचंद दोशी एवं उनके सुपुत्र श्री संजयभाई दोशी एवं रूपेनभाई दोशी परिवार की ओर से साधर्मी भाई-बहिनों, ब्रह्मचारियों, मंदिरों, वाचनालयों हेतु किया जा रहा है।

इच्छुक महानुभाव 15/- रुपये के फ्रेश डाक टिकिट निम्न पते पर भेजकर मँगा लेवें। ध्यान रहे यह योजना **30 अप्रैल, 2008** तक ही है।

ह्न निःशुल्क साहित्य वितरण विभाग
श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15 (राज.)

विद्वत्परिषद् के तत्त्वावधान में सेमीनार

नई दिल्ली : सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्यश्री विद्यानन्दजी की पावन जन्म जयन्ती के अवसर पर बाहुबली एन्क्लेव में 22 से 24 अप्रैल, 08 तक श्री अ. भा. दिग. जैन विद्वत्परिषद् के तत्त्वावधान में समयसार पर तीन दिवसीय राष्ट्रीय सेमीनार का आयोजन किया जा रहा है। सेमीनार आचार्यश्री विद्यानन्दजी के पावन सान्निध्य एवं विद्वत्परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के मार्गदर्शन में सम्पन्न होगा।

इस अवसर पर वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध विद्वानों को आजीवन श्रुतसेवा हेतु सम्मानित किया जायेगा तथा विद्वत्परिषद् द्वारा प्रदत्त पुरस्कार प्रदान किये जायेंगे। **ह्न अखिल बंसल, प्रचार मंत्री**

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

1 से 8 अप्रैल	कोलकाता	तीनलोक विधान
17 से 20 अप्रैल	आत्मार्थी ट्रस्ट, दिल्ली	महावीर जयन्ती एवं उपकार दिवस
22 से 24 अप्रैल	बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली	समयसार पर सेमिनार
3 मई से 8 मई	देवलाली	गुरुदेव जयन्ती
18 मई से 4 जून	अलीगढ	प्रशिक्षण शिविर
5 जून से 31 जुलाई	विदेश यात्रा	धर्म प्रचारार्थ
3 से 12 अगस्त	जयपुर	शिक्षण-शिविर

जैनपथप्रदर्शक के स्वामित्व का विवरण

फार्म नं. 4 नियम नं. 8

समाचार पत्र का नाम : जैन पथप्रदर्शक (हिन्दी)
प्रकाशन स्थान : श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-15 (राज.)
प्रकाशन अवधि : पाक्षिक
मुद्रक : श्री प्रमोदकुमार जैन (भारतीय) जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम.आई.रोड, जयपुर (राज.)
प्रकाशक का नाम : ब्र. यशपाल जैन (भारतीय) पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15 (राज.)
सम्पादक का नाम : श्री रतनचन्द भारिल्ल (भारतीय) श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15 (राज.)
स्वामित्व : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15 (राज.)

मैं ब्र. यशपाल जैन एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : 17-3-2008 प्रकाशक :
ब्र. यशपाल जैन
ट्रस्टी, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

धर्मानुराग धर्म का प्रकार नहीं, राग का प्रकार है; अत: वह धर्म नहीं, राग ही है। धर्म तो एक वीतरागभाव ही है।

ह्न गागर में सागर, पृष्ठ-90

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा,** डबल एम.ए.(जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन; इतिहास), नेट, एम.फिल (जैन दर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- ४ बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५ (राज.)
फोन : (०१४१) २७०५५८१, २७०७४५८
फैक्स : (०१४१) २७०४१२७